भारतीय सिनेमा में परिवारः फिल्म बागवान के सन्दर्भ में

- आदित्य अवस्थी
- डा. उमेश चंद्र पाठक

नयी शताब्दी के बॉलीवुड सिनेमा में परिवार के चित्रण में एक नया रूख उभर कर सामने आता है। भारतीय सिनेमा और विशेष कर हिंदी सिनेमा में परिवार की हमेशा महत्वपूर्ण भूमिका रही है। एक समय था जब कि सिनेमा संयुक्त परिवार के विचार का समर्थन करता था और बदलती परिस्थितियों में उसकी समस्याओं के समाधान के प्रयासों और चुनौतियों को उभारता था। फिर एक ऐसी फिल्मों का दौर आया जिसमें मां की सत्ता और महत्व को प्राथमिकता दी गई। मदर इंडिया जैसी फिल्में बनीं जो कि आल टाइम ग्रेट फिल्मों में से एक गिनी जाती है। कुछ ऐसी फिल्में भी बनीं जिसमें पिता की सत्ता को महत्व दिया गया है।

इसके बाद पारिवारिक विभेदन यानी टकराव और बिखराव को चित्रित किया गया। इस दौरान एकल परिवार और बिखराव पर आधारित फिल्में बनाने का सिलसिला आया। एकल माता और पिता का चरित्र चित्रण करने वाली फिल्में आई।

अस्सी के दशक से पारिवारिक फिल्मों के प्रति भारतीय सिनेमा का रूझान कम होना शुरू हुआ। 90 का दशक हिंसा और सेक्स को जहां प्रमुखता से दर्शाता है वहीं मिलीनियम ईयर दो हजार के बाद एक प्रकार से संयुक्त परिवार का हिंदी सिनेमा में लोप प्रायः हो जाता है। भारतीय समाज की इकाई परिवार के स्थिति इन वर्षों में लगातार बदली है। संयुक्त से एकल परिवार की पृवत्ति बढ़ती रही और वर्तमान में यह एकल परिवार के अंदर भी सेल्फ सेंटरड यानी स्व केन्द्रित होकर रह गई है। परिवार की इकाई से निकल कर लिव इन रिलेशन शिप और समलैंगिक संबंधों तक को समाज में आंशिक रूप से स्वीकार करना आरम्भ कर दिया है। साहित्य की तरह सिनेमा भी समाज का आईना होता है साहित्य ओर सिनेमा एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं। सेलोलाइट के पर्दे पर घटित घटनाआंे का जहां समाज अनुकरण करता है वहीं सिनेमा समाज में घटने वाली घटनाआंे को अपने माध्यम से नाटकीय रूप से चित्रित करने का प्रयास करता है।

साठ से सत्तर का दशक हिंदी सिनेमा का स्वर्ण काल कहा जा सकता है जब सबसे ज्यादा फोकस सामाजिक नैतिक और पारिवारिक मूल्यों पर हुआ करता था। पिछले इन दशकों में 2003 में आई अमिताभ बच्चन अभिनीत फिल्म बागवान को अपवाद के रूप में रखा जा सकता है। फिल्म का शीर्षक ही अपने आप में बहुत कुछ बता देता है।इस प्रकार एक माली बाग के सभी पेड़ पौधों का ध्यान रखता है देख रेख करता है उनके

विकास के लिए हर जरूरतें पूरा करता है। परिवार का मुखिया भी ऐसे ही एक बाग का माली जैसा है जो परिवार के सभी सदस्यों का ख्याल रखता है और उनके विकास के लिए निरंतर प्रयास करता रहता है। परिवार का विकास परिवार के मुखिया के सोच पर निर्भर है। उसके मूल्य और उसके प्रयास और उसके भविष्य की योजना पर परिवार की उन्नति टिकी होती है। ऐसे में परिवार का मुखिया एक गंभीर और जिम्मेदार व्यक्तित्व होता है। जीवन दर्शन का एक सामान्य नियम है एक देता है और दूसरा पाता है। देने वाला सदैव बड़ा होता है जिस प्रकार ''वृक्ष न कभउ फल चखे नदी न पीवे नीर परमारथ के कारणे साधुन धरा शरीर रहीम राज के इस दोहे का अर्थ है & ''पेड़ स्वयं फल नहीं खाता परन्तु दूसरों के लिए सदैव फल देता है। नदी स्वयं जल नहीं पीती। इसी प्रकार भले लोग दूसरों के कल्याण के लिए ही काम करते हैं। परिवार का मुखिय भी उसी पेड़ के समान होता है जिसे सदैव ही परिवार की चिंता होती है। फिल्म का कथानक टूटते पारिवारिक मूल्यों और रिश्तों के स्वार्थपरता और परिवार के छद्म सम्मान की सामाजिक प्रतिष्ठा पर आधारित है। कथानक वस्तुतः आधुनिक परिवार खास कर नगरीय परिवारों की हकीकत से रूबरू कराता है। जहां व्यस्ति समस्ति पर लगातार भारी होता जा रहा है। फिल्म में एक पिता अपनी समस्त इच्छाओं का त्याग कर के अपनी संतानों की उज्ज्वल भविष्य के लिए यथा संभव प्रयास करता है। इस प्रक्रिया में वह स्वयं के भविष्य का चिंतन भूल जाता है। अपने दिये संस्कारों और संतानों पर अगाध विश्वास उसे जीवन के आने वाले हर छोटे बड़े दुश्वारियों से लड़ने की शक्ति देता है।

फिल्म के कथानक का केन्द्र बिंदु परिवार है। परिवार के सभी सदस्य मिल कर ही परिवार को पूर्ण करते हैं। नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच आवश्यक सामंजस्य भी कथानक के विशेषता है। आधुनिक तकनीक और विकास ने संचार के न जाने कितने साधन सुलभ करा दिये हैं फिर भी इंसान का इंसान से संचार आज भी वास्तव में भावना से ही संभव है। रिश्तों में भावुकता परिपक्वता परस्पर संबंध और जिम्मेदारी का अहसास कितने जरूरी है इस पर फिल्म के कथानक में काफी जोर दिया गया है। ''परहित सरिस धर्म नहीं भाई सो का जानै पीर पराई' के भाव का भी यथा स्थान कथानक में महत्व दिया गया है। परेश रावल और उनकी पत्नी का चरित्र फिल्म में पराए दर्द को महसूस करने वाले इंसान का है। यह निसंतान दम्पत्ति संतानों की सच्चाई और उनके द्वारा किये गए मां बाप की प्रताडना से दुखी हो कर संतान न होने पर भी संतोष प्रकट करता है और ईश्वर को धन्यवाद देता है। पूरे कथानक में यह दृष्य अपने आप में संतान और परिवार से जुड़े अनेक प्रश्नों का उत्तर देता प्रतीत होता है। परिवार के इकाई के रूप में सदस्य जब परिवार के मुखिया और पारिवारिक नियमों की अवहेलना करने लगते हैं पारिवारिक मूल्यों का बिखराव होने लगता है वहीं पारिवारिक विघटन का आरंभ हो जाता है।

परिवार को केन्द्र बिंदु में रख कर रिश्तों के यथार्थ रूप के ताने बाने से रचा फिल्म का कथानक काफी प्रभावशाली और सत्य के निकट प्रतीत होता है।

कहानी का चरमोत्कर्ष दुखद है यह काफी मुश्किल होता है जब आप का एक सपना पूरा हो और वही सपना आपके दूसरे सपने टूटने का कारण बन जाए। पहला सपना उसकी संतानों की सफलता होती है जो पूरी होती है और दूसरा सपना उसका विश्वास होता है कि मेरी संतान बुढ़ापे में मुझे सुख और सम्मान देंगे। जीवन की इस मृग मरीचिका के टूटने से पिता काफी आहत होता है और यहीं से उसके यथार्थवादी व्यक्तित्व का जन्म होता है।

पश्चिमी दार्शनिक मैकटागार्ट का कथन है कि गुड एंड इविल्स आर एवरीवेयर इविन विद इन अस। संसार में भी अच्छे और बुरे व्यक्ति दोनों की मौजूद हैं। समाजिक संतुलन इन्हीं से बनता है। फिल्म में भी मुख्य अभिनेता चरित्र को एक अच्छे व्यक्ति के रूप में गुजराती रेस्तरां वाला मिलता है जो उसके पारिवारिक कष्ट को समझ कर उसे काम करने के लिए जगह दे देता है। मानवीय दृष्टिकोण से मनुष्य को मनुष्य का कष्ट यदि समझ में आ रहा है तभी तक वह मनुष्य है। वर्तमान में हम सब इस बात को पीछे छोड़ते हुए केवल स्वयं के कष्टों की बात करते हैं। क्या फर्क पड़ता है का जुमला अकसर सुनने को मिलता है। जब स्वयं के साथ कुछ बुरा घटित होता है तो अहसास होता है कि ^^कितना फर्क पडता है।' सामाजिक स्वीकृति की चाह में व्यक्ति परिवार की अवहेलना करने लगता है। जब कि परिवार एक स्थायी व्यवस्था है हमें घूम फिर कर वापस वहीं आना पड़ता है। अपने अच्छे बुरे की पहली पहचान वहीं होती है। बच्चे की पहली पाठशाला परिवार है। परिवार से दिये हुए मूल्य ही व्यक्तित्व की पहचान बनते हैं। इस प्रकार जड़ों से कट कर कोई भी पौधा हरा नहीं रहता। विकास के नाम पर परिवार से कट कर भी व्यक्ति अपने वास्तविक पहचान और प्राकृतिक विकास को प्राप्त नहीं कर सकता। परिवार से मिले मूल्य ताउम्र आप की पहचान का हिस्सा बनते हैं। आप के व्यक्तित्व के अधिकांश पहलू परिवार से मिले इन्हीं आधारभूत मूल्यों से विकसित होते हैं। फिल्म बागवान के कथानक में कमोवेश कुछ ऐसा ही चित्रण है। आगे बढ़ने की होड़ में संताने अपने मां बाप को छोड़ देते हैं।

नयी सदी के सच को और बुजुर्गों के आत्मनिर्भरता के महत्व को जानने के बाद फिल्म का मुख्य चरित्र आर्थिक जगत के यथार्थ के बीच स्वयं को समायोजित करने का प्रयास करता हैं। इसी क्रम में कई नाटकीय घटनाओं के बीच वह अपनी टूटे टाइपराइटर से अपनी आत्मकथा को एक किताब का आकार देता है। किताब छपती है, और देखते देखते उसे अंतरराष्ट्रीय पुरष्कार मिलता है। कल का लाचार वृद्ध पिता एक झटके में सेलेब्रटी हो जाता है। उसकी इस सच्चाई को जानने के बाद उसे ठुकरा चुके सभी संतान उसके पास आते हैं। यह दृष्य वास्तव में रिश्तो

में बढ़ चुके भयानक स्वार्थ पर एक व्यंग्य है। वर्तमान समाज की सच्चाई समझ चुके बागवान के लेखक उस वृद्ध पिता के मुख से अंत में दिया गया संदेश वास्तव में फिल्म का सार है। हर इंसान को अपने बुढ़ापे की व्यवस्था पूर्व निश्चित करनी होगी। आज का व्यक्ति वादी परिवार और परिवार के सदस्य आप से तभी तक जुड़े हैं जब तक उनकी आवश्यकताएं आप से पूरी हो रही हैं। रिश्तों के पीछे पैसे और जरूरतें हैं। सच तो यह है कि सारे रिश्ते ही पैसे से हैं।

बागवान फिल्म केवल फिल्म नहीं है बल्कि आईना है तेजी से विकसित होते भारतीय समाज का जहां जिंदगी में सब कुछ पा लेने की होड़ में रिश्ते नाते और इन सब से बढ़ कर परिवार कहीं बहुत पीछे छूटता जा रहा है।

संदर्भ सूची

Banaji, S. (2006). *Reading Bollywood: The young audience and Hindi films*. Palgrave Macmillan.

Bhandari, P. (2020). An absent or present family? Tracing Bollywood films from the turn of the century. In *Family norms and images in transition* (pp. 75–94). Nomos. https://doi.org/10.5771/9783845294056-7510

Bhattacharya, N. (2013). *Hindi cinema: Repeating the subject*. Routledge.

Deakin, N., & Bhugra, D. (2012). Families in Bollywood cinema: Changes and context. *International Review of Psychiatry, 24*(2), 166–172. https://doi.org/10.3109/09540261.2012.656307

Einwächter, S. (2022). Parental guidance recommended? Narrative functions and cultural implications of Bollywood's parent figures. *Cinéma & Cie, 22*(38), 55–69.

Gopal, S. (2012). Family matters: Affect, authority, and the codification of Hindi cinema. In *Conjugations: Marriage and form in New Bollywood cinema*. University of Chicago Press.

Joshi, P. (2015). Cinema as family romance. In *Bollywood's India: A public fantasy*. Columbia University Press. https://doi.org/10.7312/columbia/9780231169615.003.0003

Kumar, M. (2025). The ties that bind: Family relationships in the mythology of Hindi cinema. In S. Kakar et al. (Eds.), *Culture, mind, and being: Volume 3* (pp. 14–26). Oxford University Press. https://doi.org/10.1093/oso/9789354974748.003.0002

Raghavendra, M. K. (2008). *Seduced by the familiar: Narration and meaning in Indian popular cinema*. Oxford University Press.